Chapter-6

षष्ठम् अध्याय

करुणासागर की रचनाओं में भावपक्ष और कलापक्ष

षष्ठम् अध्याय
****

करुणासागर की रचनाओं में भावपक्ष और कलापक्ष
==========

सत् कैवल ज्ञान संप्रदाय के प्रवर्तक करुणासागर महाराज का स्थान ज्ञानी कवि अखा की ज्ञानमार्गीय शाखा के कवियों में अनन्यतम है । ज्ञानी संत कवि अखादि की भाँति ही करुणासागर भी कबीर की ज्ञानमार्गीय विचारधारा से प्रभावित हैं । अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक बार कबीर और अखा की प्रशस्ति भी की है । वे बहुश्रुत विद्वान्, धर्म संशोधक एवं तत्त्वचिंतक थे । इन्होंने विधिवत विविध प्रकार के धर्म-ग्रंथों , वेद-वेदांत श्रुति-स्मृति, इतिहास तथा पुराणों का अध्ययन किया था, जिसका प्रमाण उन्होंने स्वयं ही दिया है -

पूरवके हम लक्ष चकंदे, शास्त्रमें पण भये नव छंदे ।
मात-पिता आनंद ही भयेउ,सुत आपनो पंडित ही भयेउ ।। [1]
कर्मकांड सबमें द्रडवाया, कोइ नहि कैवल लक्ष भाया ।
और कथा इतीहास बखानौ, सो सबही-हम तेही पहचानौ ।। [2]
पढन लगे पीछे हम वेदु, सुरती समरती जानो भेदु ।
तेही द्वीप साहास्त्र हे सोलु,सब बंधे नीभम लेई अोलु ।। [3]

कबीर की भाँति ही इन्होंने भी अपने स्वानुभूत ज्ञान को एवं भाषा को ` पूरब ` की अर्थात् पूर्व जन्म के संस्कारों की कहा है -

पूरवने अंकूरे पामा, माटे अंकुरधर सत नामा । [4]

---

1. अगाधबोध 57/11
2. वही 9.
3. वही 7.
4. वही 56/24.

तथा-

` अद्भुत ज्ञान हमारा, हो संतो अद्भुत ज्ञान हमारा । `

इससे यह स्पष्ट ही है कि इन्होंने इस जन्म में अपने पूर्वजन्म के संस्कारों से ही दिव्य-दृष्टि को प्राप्त किया था ।और यही अद्भुत ज्ञान इनका प्रतिपाद्य विषय रहा है । वे स्वयं को उसी परमोच्च ज्ञान जिसे इन्होंने ` कैवल ज्ञान ` से अभिहित किया है, उसीका अंकुर या अंश मानते हैं । इतना ही नहीं वरन कबीर की भाँति जहाँ अपने को " हाड मांस नहीं रूद्र हम नहि आया " कहते हैं वहीं यह भी कहते हैं --

हम हैं पुरूष अनाद्य, उपाधित्ये वरजीत वेशा ।
उपज्यो आपोआप व्याप मोइ सकल सहीरा ।
अविभक्त्य अंग हमार, बिंदु के नहि शरीरा ।
विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा ।।

प्रस्तुत प्रमाण से यह स्पष्टत: लक्षित होता है कि करूणासागर भी अपने समय के अवतारी पुरूष थे । जैसा कि कबीर के संबंध में माना जाता है कि वे एक व्यक्ति की संज्ञा नहीं हैं, ` परमतत्व ` है जो अज्ञानान्धकार में भटकते हुए प्राणियों का मार्गदर्शन करने के लिए प्रत्येक युग में अवतीर्ण होता है और सदुपदेश करता है - ` जुग- जुग सो कहवैया, काहु न मारी बात ` [रमैनी - 5] और ` ना कहुँ गया ना कहुँ आया ---- मुख ही जनाई बात ` ।[1] तात्पर्य यह है कि ` कबीर कही मुख बैन ` [बीजक साखी 261] की भाँति करूणासागर ने भी वेद-वेदांतों से परे अपने अलौकिक व स्वानुभूतिपरक सत्य की अभिव्यक्ति - आत्मज्ञान प्रकाश- को ही अपने विषय--निरूपण का प्रमुख आधार बनाया है । इसीलिए इन्होंने वेदादि विहित ज्ञान और निर्गुण- सगुण से परे पुरूष की भक्ति को ` कैवल्य ज्ञान ` और

---

1. तुलनीय- आदौ अंश वंश हम जाके, अवध काल नहि खासी

करूणासागर कृत भजनसागर पृ. 3.

' कैवल्य भक्ति ' के रूप में अंगीकृत किया है । कबीर की भाँति इन्होंने भी ' पंडित वाद वदहिं ते झूठा ' कहकर स्वानुभूति विहीन ज्ञान-ग्रंथों को पानी में बहा देना ही उचित माना है -

वा घर काहु न जान्या हो संतो, वा घर काहु न जान्या,
बेति निगम पोकार कहयां ना, हो संतो वा घर काहुं न जान्या ।
वेद कतेब कुरान पुराना, वामे आ जगत भूलाना,
जनम मरण थोखे धरखाया, आत्मा नहीं पेहेचाना हो संतो

सकृत भाष्य, अविनाशी पद 2

और

देश हमारा वंका हो संतो, देश हमारा वंका,
जाहां नहि कालझालकी शंका, हो संतो देश हमारा वंका ।
चलना चाहो कोहु मम मारग, छोडो आ तनकी आकांक्षा,
काटी शीश धरो धरणी पर, कुन राय कुन रंका. - संतो [1]

अविनाशी पद 4

ऊपर यह कहा जा चुका है कि करुणासागर कबीरादि ज्ञानमार्गीय परंपरा की एक ऐसी श्रृंखला है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता ।

विषय की दृष्टि से करुणासागर का काव्य-फलक अत्यंत विस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण है । इन्होंने वैदिक कर्मकांड, सगुण ईश्वरवाद, अवतारवाद, मूर्ति-पूजा, धार्मिक अंध विश्वास और सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध करते

---

1. तुलनीय- 1 अब घर जारा आपना, लिए मुराड़ा हाथि ।
अब घर जालौं तासका, जो चले हमारे साथि ।।
2 यह तो घर है प्रेमका, खालाका घर नाहि ।
शिर उतारे भूइ धरे, तब पैठे घर माँहि ।।

काव्य पारिजात - सं. विजयेन्द्र स्नातक,
पृ. 94.

हुए वेदांत समस्त ज्ञानवाद की नींव पर सकर्ता सिद्धांत की प्रतिष्ठा की है । अतः इनके मत से ईश्वर सगुण-निर्गुण से परे इस सृष्टि का कर्ता है । ईश्वर संबंधित अनुभूतियों में किंचित भेद के साथ वे शांकर वेदांत के अद्वैत दर्शन का ही अनुसरण करते हुए परिलक्षित होते हैं -

घर मठ पटमें सकल हरि दरसे, निरमल द्रष्टे निरंतर परसे ।
स्थावर जंगम जल थल जाही, अंश अजात अखिल भरन मांही ।
भजन सागर पृ. 34.

ग्रंथों में निरूपित विषय

करुणासागर ने ` अगाध बोध ` , ` विज्ञान सकृतमणिदीप ` , ` विश्वबोध चोसरा `, ` सकृत चिंतामणि `,` अद्वैतानैन नरवेद चिंतामणि `, ` परम सिद्धांत `, ` प्रणव कल्पतरु `, ` ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ `, ` तिथि-ग्रंथज्ञान शिरोमणि `,` हंसतालेवा ,` ` कैवल विलास `, ` विश्व-भ्रमविध्वंसनिधि ` जैसे धर्मतत्त्व विषयक ग्रंथों का प्रणयन किया है । इसके साथ ही इन्होंने स्फुट रूप में अनेक पदों और भजनों की रचना भी की है । यद्यपि ग्रंथों का परिचय दिया जा चुका है, तथापि प्रस्तुत अध्याय के निरूपण हेतु यहाँ पर प्रस्तुत ग्रंथों में निरूपित विषयों का सांकेतिक परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

` अगाधबोध ` के प्रारंभिक 37 अंगों में अद्वैत सकर्ता सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है । तदनंतर करुणासागर ने अपने चमत्कारपूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला है । ` विज्ञान सकृतमणिदीप ` में 96 छप्पय हैं । जिनमें से 19 से 45 में इनका दिव्य आत्मवृत्त है । बाद के छप्पयों में ज्ञान- विज्ञान का सूक्ष्म निरूपण किया गया है । अपने आत्मज्ञान के द्वारा इन्होंने वेद, कुरान और पुराणादि शास्त्रों और ग्रंथों द्वारा कथित बात से विलग कैवल भगवान, अंश, विश्वरचना, माया और परमगुरु को समझने की दृष्टि प्रदान की है । ` विश्वबोध चोसरा ` के तीन अंगों में दुर्जनों के लक्षणों का वर्णन

करते हुए अन्य दो अंगों में सज्जनों के स्वरूप-प्रकार पर प्रकाश डाला गया है । ` पंचम श्वसंवेद ` को चारों वेदों से श्रेष्ठ बताकर कैवल पद के परम ज्ञान की अनुभूतियों का वर्णन किया गया है । ` सकृत चिंतामणि ` में कैवल कर्ता तथा उसके कृत रूप चौदह लोकों के स्वरूप का आलेखन किया गया है । ` अद्वैताद्वैत नरवेद चिंतामणि ` में प्रमुखरूपेण निर्वेद या वैराग्य की सर्वांगीण रूप से चर्चा की गई है । इसमें संप्रदायगत बातें भी मिलती हैं । परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु के आठ केतुओं में ` कैवल ज्ञान संप्रदाय ` के विशिष्ट सकर्ता सिद्धांत को प्रस्तुत किया गया है । ` ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ` ग्रंथ में ज्ञान भक्ति और वैराग्य की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है । इसमें ज्ञान की श्रेष्ठता और इसके साथ भक्ति की आवश्यकता को भी स्पष्ट किया गया है । ` तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि ` में तिथिवार ज्ञान के विकास का वर्णन है । ` हंस तालेवा ` ग्रंथ के बावन अंगों में मानव जीवन के मार्गदर्शन रूप ज्ञान बोध दिया गया है । सांसारिक माया का त्याग, हिन्दू-मुस्लिम एकता, इष्टदेव की उपासना की मर्यादा, मूर्तिपूजा की मर्यादा, निरालंब का महत्त्व-प्रतिपादन, ब्रह्मज्ञान, सकर्ता सिद्धांत, अद्वैताद्वैत का स्वरूप बोध, अंश-अंशी संबंध, संत गुण, भक्ति महिमा आदि संबंधित तात्त्विक विषयों की मीमांसा की गई है । ` कैवल विलास ` के 43 अंगों में विश्वसर्जक कैवल प्रभु और इनके विलास रूप विश्व के स्वरूप का अंकन किया गया है । इसमें पंच महाभूत, पंच अवस्था, अंतःकरण और अन्य तत्त्वों का निरूपण किया गया है । ` विश्वभ्रम विध्वंस निधि ` में 56 अंग हैं । इस ग्रंथ का प्रमुख विषय भी सकर्ता स्वरूप और उसके ज्ञान का बोध है । इनके मतानुसार कैवल कर्ता सगुण-निर्गुण से परे हैं, जहाँ वेदादि ग्रंथों की पहुँच नहीं । कैवल पद अखंड सुख का धाम है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, निरंजन देव अवधि-अंत युक्त हैं । कैवल कर्ता अखंड, अजर और अमर हैं । मनुष्य को एकमेव इसी परमतत्त्व की प्राप्ति करनी चाहिए । ` महामणि बोध ` में अपने मतों के आलोक में स्वामी सहजानंद के संप्रदाय की टीका की गई है । इससे इनकी धार्मिक असहिष्णुता व्यक्त होती है ।

विषय निरूपण की शैली सैद्धांतिक एवं दार्शनिक होने से इनकी रचनाओं में भाव-बोध के रागात्मक पक्षों का अभाव ही है । कबीर आदि की भाँति परमतत्व के रागात्मक या भावात्मक संबंधों की अभिव्यक्ति इने गिने स्थानों में कहीं मिल जाय । प्रायः सर्वत्र उपदेशक और तत्वबोध चिंतक का ही रूप दिखाई देता है । अतएव इनके काव्य में वैचारिक शुष्कता अधिक है, भावात्मक या संवेदनात्मक सरसता बहुत ही कम । संयोग और विप्रलंभ श्रृंगार के प्रसंगों को लेकर जैसे अन्य ज्ञानमार्गीय संत कवियों ने अनेकानेक मार्मिक और हृदयगम्य उदभावनाएँ की हैं, वैसी उदभावनाएं इनके काव्य में नहीं मिलतीं । इसका प्रमुख कारण है उनकी तत्व-निरूपण बोधक सैद्धांतिक शैली जो प्रायः वर्णनात्मक है । कहने का आशय यह है कि इनमें मीमांसक का ही रूप सर्वाधिक रूप से उजागर हो पाया है, हृदय-पक्ष के चितेरे का नहीं । हाँ, जहाँ इन्होंने सकर्ता कैवल के साथ अपने आध्यात्मिक संयोग पक्ष का वर्णन किया है, वहाँ भावों की सरसता देखते ही बनती है, किन्तु ऐसे प्रसंग बहुत ही कम हैं - जैसे ` होली पद ` और ` वसंत पद ` संबंधी पदों में अखंड- ब्रह्म के साथ खेली गई होली के वर्णन में - यथा --

अखंड ब्रह्म होरी खेलीये हो, हो मेरे प्यारे खेलीये स्वासो स्वास,
अखंड ब्रह्म होरी खेलीये हो ।
रूप रंग रेखा बीना मुरति, सुरत बुरत सोहाग बलजाँ,
अविगत अकल अवे अविन्यासी, जाको है सकल परकाश ।
संत अनंत मिले अनुरागी, संगि शेष माहेवेश बलजाँ,
कोटि त्रिस त्रिया सुर वैष्नव, विरंची करत विलास ।
वरण अष्टादश एक भई है, सतगुरु शब्द समास बलजाँ,
जुदा कोई रहेबन पावेरे, आत्मा तत्व विचार ।
सेहेजानंद आनंद घर मिलके, निरगुण शब्द विभास बलजाँ,
निगम चार वाजा विधि बाजेरे, चंदा सुर जोत परकाश ।

व्योम तत्वकी तो करी पिचकारी रे, दिनी है ओहंग केरे हाथ ।
कहे कुवेर भिंज्यो हरि सारो रे, प्यारो लागत ही साईं ।

तथा

चैतन ब्रह्म संग खेलीये हो होमेर प्यारे खेलीये फाग वसंत
चैतन ब्रह्म संगे खेलीये हो.

कर्म अनेक कुमकुम केशर, ज्ञान पिचकारी भरी डार
हारजीत भई हरि साथे, आणतां अहंकृति अंत ।

सकृत भाष्य- होली पद 1,2

अतएव यह कहा जा सकता है कि केवल संप्रदायगत ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में ज्ञान ही प्रमुख एवं सर्वोपरि होने से यहाँ भक्ति और उपासना की रागात्मक रीतियों का अनुभूति सापेक्ष चित्रांकन नहीं मिलता । ठीक ही है, ऐसा आलेखन इनका साध्य भी तो नहीं । अस्तु, इनकी रचनाओं में जो वस्तु-बोध प्राप्त होता है वह गूढातिगूढ ज्ञानमूलक धरातल को ही अधिक छूता है, आगतिक राग-बोध के स्तरों को नहीं, जैसा कि कबीरादि ने अंश-अंशी की तादात्म्यात्मक स्थितियों एवं अनुभूतियों को पति-पत्नी, माता-पुत्र आदि से सांसारिक संबंधों को लोक-व्यवहार सापेक्ष धरातल पर उजागर किया है । यही कारण है कि इनमें साधनात्मक अथवा यौगिक रहस्यानुभूतियों की प्रधानता है और इसी स्तर पर जीव, जगत, ब्रह्म और माया आदि के स्वरूप को समझाने के लिए परंपरागत दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । साधनात्मक प्रणाली के विभिन्न सांकेतिक एवं पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है ।

वस्तु-बोध के सूक्ष्मातिसूक्ष्म और इन्द्रियातीत आलंबनत्व की स्वरूप-मीमांसा की रीति में विभिन्न प्रकार के रस-दर्शनों एवं उसके विभाव, अनुभाव और संचारी आदि की सर्वांगीण नियोजना नहीं मिलती । संतों का ध्यान काव्योचित गुण धर्मों एवं उपकरणों की ओर न होकर अपने कथ्य की सीधी

और सरल अभिव्यक्ति की ओर ही होता है । " वे कवित्त नहीं बनाते, उन्हें स्वयं कवित्त बनाते हैं " की उक्ति संत-काव्य के संबंध में यथार्थ रूप से चरितार्थ होती है ।

उपर्युक्त तथ्य के आलोक में यदि हम करुणासागर के काव्य में प्राप्त विभिन्न भाव-बोध एवं रसात्मक सृष्टि को जब खोजने की चेष्टा करते हैं, तब एक प्रकार से शास्त्रीय परिपाटी से परे वाणी-विधान की सृष्टि होने के कारण निराशा ही पाते हैं । जिसका आलंबन ही बिना हाथ, पैरों, नाक, कान और आँखोंवाला हो, तब उसके आकर्षणगत प्रभावों की वर्णना यदि प्रकृति के रहस्यात्मक वातावरण के आलोक में की जाय तब भी संभव है कि वहाँ उस अज्ञात ब्रह्म के प्रति निवेदित अपनी रहस्यात्मक उक्तियों में आध्यात्मिक रति भाव को स्थापित किया जा सकता है । जिज्ञासा , विस्मय, हर्ष और निर्वेद जैसे भावों की अनेक रूप से काल्पनिक या रहस्यात्मक स्तर पर नियोजना की जा सकती है जैसाकि कबीरादि संत कवियों ने इसी प्रकार के वर्णनों द्वारा अपने काव्य को चमत्कारपूर्ण सौंदर्य प्रदान किया है । ऐसे प्रसंगों की सृष्टि में भी केवल प्रभावों का तो अंकन हो पाया है, किन्तु रस के संपूर्ण अवयवों का एक प्रकार से अभाव ही लक्षित होता है ।

करुणासागर ने अपने आराध्य सकर्ता कैवल के स्वरूप का अंकन करते हुए कहा है --

> अगणित पाण्य पादु श्रवण नेन, संख्यारहित बरनका,
> कहे कुवेर सोही पति मेरा जुग जाहेर जश डंका ।
>
> सकृत भाष्य-अविनाशी पद 4

तथा

बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से अद्वैत दर्शन परक इनकी उक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं, जिनसे इनके आलंबन के स्वरूप का बोध स्वतः ही हो जाता है -

नीरखे निरमल दृष्टिए सूरजे, ब्रह्मनो भास ते विश्वमांही,
वापीने कूप तडाग नीरे भर्यां चंद्रने सूरज तेज तांही
सतकुवेर कहे तुंज विलसी रह्यो, तुंज विना अन्य ते कांई नांही ।

सकृत भाष्य- प्रभात पद 5

तथा

देही देवलमें देवा हो संतो देही देवलमें देवा

- - - - - -

घट ही में ज्ञान दिपक उजीयारा, चरण पखारी लेवा ।

सकृत भाष्य-आशावरी पद 7

उपर्युक्त उद्धरणों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि करुणासागर का आलंबन अनिर्वचनीय है । आलंबन की सत्ता को- अस्तित्व-को घट के ही भीतर निहारने जैसे वर्णनों में प्रभाव की स्थिति न होकर ज्ञान-बोध ही उजागर हो पाया है । हाँ, जहाँ इन्होंने आध्यात्मिक रूपकात्मक प्रसंगों की सृजना की है, वहाँ सुन्दर भावों की स्थितियों के दर्शन होते हैं, किन्तु ऐसे प्रसंग बहुत ही कम हैं । प्रायः ऐसे भाव-संकुल पदों की सृष्टि `चरकीडा`, `हिंडोला`, `चुंदडी`, `वसंत`, `होली` आदि पदों में हुई हैं -

सुणीयो आवका अंडाण, जाकी रमत मांही मंडाण

- - - - - -

रंग्यो रंग पुरण काम, धरीयो चुंदडी को नाम
ताका कहु में विस्तार, ढांक्यो सकल ही संसार

- - - - -

गुरुगम खोज घटमें लाई, अविगत अगम चुंदडी गाई ।

सकृत भाष्य- चुंदडी पद

शेष के अधिकांश रूपों में इनका ज्ञान-पक्ष ही विविध लक्षणों, सिद्धांतों एवं स्वरूप-बोध निरूपण की शैली के स्तर पर उजागर हो पाया है । इसीसे इनका धर्मोपदेशक एवं परम आचार्य गुरु के स्वरूप की ही झांकी प्रमुख रूप से होती है ।

प्रस्तुत धार्मिक या सांप्रदायिक आचार्य गुरु का स्वरूप काव्यचारुता के पक्ष को दबा देता है । प्रस्तुत बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिस प्रकार रीतिकालीन कवियों ने काव्यशास्त्रीय अंगों के लक्षण, प्रलक्षण निरूपण की शैली को प्रस्तुत किया है, ठीक उसी प्रकार इन्होंने ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सृष्टि रचना, सकर्ता के कर्तृत्व एवं उसके स्वरूप के साथ ही सांप्रदायिक विधि-विधानों की मीमांसा की है । प्रस्तुत कार्य ही उनका लक्ष्य रहा है । उन्होंने कहा भी है -

काव्य नहि कविता नहि, नहि गुण ग्रहेवा ज्ञान ।
परम अंश पति परमके, काढ़ू पोत नीदान ।।
हंस तालेवा - अंत - साखी- 10

कला पक्ष -
****

अभिव्यक्ति का संबंध काव्य के बाह्य पक्ष से है । काव्य का बाह्य कलेवर ही काव्य में वर्णित या हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । कवि अपने भावों विचारों और कल्पनाओं की अभिव्यंजना भाषा के द्वारा ही करता है । अतएव भाषा को भावादि के अनुरूप होना आवश्यक है, इसके अभाव में भाव एवं विचारगत चारुता के बोध की प्रतीति में अनेकानेक दोषों के आ जाने से बाधा उत्पन्न हो जाती है और काव्य अपने सौंदर्य स्तर से च्युत हो जाता है । इसलिए व्यवहार की भाषा को साहित्य की भाषा से अलग करके देखा जाता है । कवि की भाषा इसलिए प्रायः विशिष्ट स्वरूप की होती है । कवि अपने अभीष्ट भावों को यथेष्ट रूपाकार देने के लिए भाषा एवं शैली के आवश्यक तत्वों एवं गुणों का प्रयोग करता रहता है । इस स्तर पर उसकी भावाभिव्यक्ति में उसके व्यक्तित्व का भी सहज ही समावेश हो जाया करता है । काव्य भाषा में प्रयुक्त विविध प्रकार के शब्दों, प्रसाद, माधुर्य, ओज जैसे गुणों, विशिष्टता बोधक शब्दों

एवं अर्थों पर आधारित अलंकारों, वर्णन की रीतियों, शब्द शक्तियों, प्रतीकों, बिंबों एवं छंदादि के प्रयोग इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं कि कवि भाषा के प्रस्तुत उपकरणों के द्वारा अपने भावों को मूर्त रूप प्रदान करना चाहता है । उसके कवि कर्म की सफलता भाषा-प्रयोग के औचित्य या विवेक पर ही आधारित रहती है और इसीलिए साहित्य की भाषा प्रायः साहित्येतर शास्त्रों की भाषा से पृथक हो जाया करती है । इस तथ्य को दृष्टि में रखकर ही हमारे प्राचीन काव्याचार्यों ने काव्य को ' वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।, रमणीयार्थ प्रतीपादकः शब्दः काव्यम् । और इसी प्रकार काव्य के आत्मपक्ष पर विचार करनेवाले अन्य आचार्यों ने भी शब्द और अर्थ के ऐसे संयोग को कि जिससे रमणीयता, आनंद अथवा काव्यगत सौन्दर्य की प्राप्ति संभव हो, काव्य कहा है । तात्पर्य यह है कि काव्यगत भाव, रस वा सौंदर्यबोध की प्रतीति प्रयुक्त भाषा द्वारा ही की जा सकती है ।

करुणासागर की भाषा संरचना और शैली की प्रकृति पर विचार करने से पूर्व यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रायः मध्यकालीन भक्त और संत कवियों ने कि जिनका परम उद्देश्य समाज को भवसागर से पार कराने के लिए उसका सम्यक रूपेण सत्-पथ-प्रदर्शन करना रहा था । सत्य के प्रकाश के बिना विश्व दीप के पतंग की नाईं अथवा कस्तुरी के मृग की भाँति भटककर परम आनंद की प्राप्ति के मार्ग से विमुख हो गया था । अतएव जीवात्मा के परमोच्च लक्ष्य परमानंद वा परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त किसी ने ज्ञान, किसी ने भक्ति तो किसी ने सदकर्म आदि मार्गों की आवश्यकता पर प्रबल जोर दिया । इन संत और भक्त कवियों का संपर्क राज-दरबारों से न होकर जन- समाज से था । अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्हें एक स्थल से दूसरे स्थल की यात्रा करनी पड़ती थी । इससे इनकी वाणी में तद प्रदेशीय भाषा - बोलियों के अनेकानेक शब्दों का सहज समावेश हो जाना स्वाभाविक ही था । तात्पर्य यह है कि संतों की भाषा का रूप

प्रायः लोक-व्यवहार की भाषा का रूप होता है । संत कवियों ने तो बोलियों- जन भाषाओं - को तो ग्रहण किया ही है, किन्तु विद्यापति जैसे शृंगारी कवियों ने भी जन भाषा पर बल देते हुए कहा है कि --

` देसिल बअना सब जन मिट्ठा । ` कबीर ने कहा है - ` भाषा बहता नीर है ` और तुलसीदास ने कहा - ` सुरसरि सम सब कहँ हित करहि ` अखा ने भी कहा है --

भाषाने शुं वलगे भूर,
जे रणमां जीते ते शूर ।

यथेष्ट भावों की तदनुरूप प्रतीति कराने से ही काव्य-भाषा की सार्थकता सिद्ध होती है । प्रस्तुत भाषा विवेक को संत कवियोंने समुचित रूप से निभाया है, इसमें दो मत नहीं । यह बात दूसरी है कि इन्होंने काव्यशास्त्र का विधिवत अध्ययन किया हो, चाहे न किया हो, काव्य-चमत्कार प्रस्तुत करना इनका प्रमुख लक्ष्य भी तो नहीं था । इनके काव्य में काव्यात्मक चारुता या `कवित्त-विवेक ` गुण के न होने के कारण इन्हें कवि के पद से गिरा देना अनुचित ही होगा क्योंकि कवि को ` क्रांत दृष्टा `, ` मनीषी `, ` परिभूः ` , ` स्वयंभूः ` आदि कहा गया है । संत कवि इन विशेष संज्ञाओं को पूर्णतया चरितार्थ करते हैं । कहने का आशय यह है कि इनके काव्य में काव्यत्व की कमी होने पर भी अपने भावों की सफल व्यंजना मिलती है, जिससे भाषा के प्रयोग भी भावानुरूप हो पाये हैं ।

उपर्युक्त कथन के आलोक में यहाँ भाषा-प्रकृति के विभिन्न उपकरणों पर दृष्टिपात किया जा रहा है । यह बताया जा चुका है कि करुणासागर का जन्म गुजरात के खेडा जिले के विजयपुर नामक गाँव में हुआ था । इनकी भाषा गुजराती थी । वे धर्मोपदेशक एवं समाज सुधारक थे, अपने ज्ञान और धर्म के प्रचारार्थ इन्हें स्थानों पर घूमना-फिरना हुआ करता था । अतः इनकी भाषा में तद्देशीय शब्दों का समावेश भी हुआ है । इन्होंने गुजराती के साथ ही सर्वाधिक रूप से हिन्दी में अपनी रचनाएं की हैं । गुजरात के संत कवियों

ने प्रायः हिंदी को संतों की व्यावहारिक भाषा के रूप में अपनाया था । संत-सुधारक होने से इन्हें अपने काव्य में हिन्दी को अपनाना अनिवार्य लगा । इसी स्वाभाविक मनोवृत्ति के कारण गुजरात के अखा, दयाराम, ब्रह्मानंद, छोटम, करुणासागर आदि संत कवियों ने जहाँ गुजराती में रचनाएं की हैं वहाँ इन्होंने हिंदी की भी उपेक्षा नहीं की । सारांश यह कि संत-कवियों द्वारा प्रायः भाषा के जन-सुलभ एवं प्रचलित रूपों का ही प्रयोग हुआ है । इन्होंने भाषा के व्यापक रूप को ही स्वीकृत किया है । इस दृष्टि से हिंदी इनकी काव्योचित भाषा का प्रमुख माध्यम रही है , इसमें अत्युक्ति नहीं ।

करुणासागर ने अपनी भाषा के विषय में कहा है --

भाषा मेरी ब्रह्मविद,साम्रथ चित किरतार,
काया कारण शक्तनुं, हम तिनुके पार ।
साखी ग्रंथ - साखी 56

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म को जाननेवाला ही इनकी भाषा को समझ सकता है । ऐसी भाषा आध्यात्मिक रूपा होने से प्रायः कार्य-कारण या शब्द और अर्थ की शक्ति से परे की होती है । व्यापक भाषा का यही लक्षण है और हिन्दी में भाषा व्याप्ति के स्तर पर लोक-व्यवहार-उपयुक्तता एवं बहुप्रियता के सर्वगुण उपलब्ध हैं । अस्तु, एक समर्थ और सशक्त भाषा के रूप में हिन्दी की गणना को उपेक्षित नहीं किया जा सकता ।

गुजरात के संत कवियों में करुणासागर की विशेषता यह है कि इन्होंने गुजराती-भाषी होने पर भी गुजराती में कुछेक पदों की ही रचना की है, जब कि इनके शेष ग्रंथ मिश्रित भाषा- संत टकसाल की भाषा में लिखे गये हैं । उदाहरणार्थ --

। सूरत हमेरी शून्यमें, फोडी इंड कटाक्ष,
चली गई बेहद पर, भेदी ब्रह्म विलास ।
साखी ग्रंथ- साखी 57

2 दश इंद्रि मन रस भई । मुक्त भया दश द्वार ।।
भवन विहंगम मीनको । मारग पायो सार ।। । ।।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि 10

3 ज्ञान भक्ति वैराग्यके । अंग एक त्रिये नाम ।।
ज्ञान शिर भक्ति भुज । त्याग दाहन ओरु वाम ।।
ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- आरंभ 14

4 अलि पंखी बासे वलगे । मणिधर शुध चंदन जड़ लगे ।
कैवल चंदन बीजा वृक्ष । चेतन बास लगे सम प्रक्ष ।।
अगाध बोध अंग 26-2

भाषा प्रकृति की दृष्टि से करुणासागर की भाषा के जो रूप प्राप्त होते हैं ये हिन्दी , गुजराती मिश्रित हिन्दी, संस्कृत मिश्रित हिंदी आदि हैं । प्राय: इन्होंने गुजराती मिश्रित हिन्दी में ही अधिक लिखा है । कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं --

क. हिन्दी बाहुल्य -

1 वा घर काहु न जान्या हो संतो, वा घर काहु न जान्या
नेति निगम पोकार कह्यां ना, हो संतो वा घर काहु न जान्या ।
सकृत भाष्य - अविनाशी पद - 2

2 गमज्ञानी अकल अद्वैतमत- गमज्ञानी
खावत पीवत बोलत चालतवे, वर्तन हे जुग देह छता ।
खटदर्शन मत देखावन पद - 4

3 ज्यौं खोटा खडवत खलक मही, प्रथा देह धारंदु
ते साकुट, लंपट, लोभी, खल मल भरिया मति मंदु
विश्व बोध चोसरा- अंग 3-11

4 जा दिन जन्म नहि शक्तिको । ब्रह्मा विष्णु महावेश ।।
तेत्रीस करोड देव नहि । चंदा सूर नहि शेष ।।

आप इच्छाए अरूपथी । रूप थयो भगवंत ।।
ता इच्छाकी शक्ति हे । शक्तिसे पंचु तंत ।।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि- अमास- 2,3.

5 रीझहु भक्ति अनिन करे जेहु ।
कैवल मोक्ष परम हम देहु ।।
कहे कुवेर सूणो मम दासा ।
हम अवतार अकल अविनासा ।।
ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ रवेणी-
48,49

6 चीत्र कल्पतरु कामधेन, त्रिती दीपक ज्योत ।
पय न पाय न वृक्ष फले, करे न ज्योत उद्योत ।।
हंस तालेवा- अंग- 5-7

ख. गुजराती मिश्रित हिन्दी -

1 आ भव के जुग दूसरे । जो धरे जनम अपार,
जब ए वस्तु विलोकशो तब होवे निस्तार ।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-15 / 2

2 ते कबहुक सतसंग समामें, जो भूला पडी आवे,
हा हा करे हैयाका फूटल, पण अंतर न भावे ।
विश्वबोध चोसरा अंग 1/12

3 त्यार पीछे भव महांय, भये हे ब्रह्मा चतुरमुख,
आद्य निरंजन देवं भेवत्ये दीयो निमम लख ।
विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा 52

ग. संस्कृत मिश्रित हिंदी -

1 बिनु निज भक्तिसे मुक्ति न पायं ।
त्रिविधं तापं बुझनं कदायं ।।

बिनु तप्त बुझं चित्तं स्वांतिनायं ।
बिनु चित्त स्वांतं नचि न रहायं ।।
फांसु मात तातं सतापं सहायै ।
मारंतं मारंतं गमारं धरायं ।।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-छंद भुजंगी-§1§1,2,5

2 सरवयंग सदपदंग, सर्व मोदनदायक
अद्वैतंग अनुसुतंग, भवचितंग इश्वरे
नभगतंग अनुभवे, न वार पार अंतभंग
सरवज्ञे स्वछंद नंग, जय जयेति श्री कुवेर कैवलं

भजन सागर पृ. 245

3 ऐसी सजन भक्ति कीम न करोति ।
सदा सत सोहाग परमपद पन्होति ।।
आलोकं परलोकं जीनुं पद प्रयेयं ।
रटं श्री विमुखं कारजनं श्रीयेयं ।।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-छंद भुजंगी §2§ 1,2.

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि करुणा-सागर की भाषा भावानुरूप सरल एवं प्रवाहित है । दार्शनिक विषयों का निरूपण होने के कारण उसमें बौद्धिक तत्त्व की प्रधानता है, जो व्याकरणिक नियमों से परे है । शब्दों को तोडने की प्रवृति प्रायः सर्वत्र दृष्टिगत होती है । इस कारण कहीं कहीं भाषा क्लिष्ट एवं दुरूह हो गई है ।

व्याकरणिक दृष्टि से भाषा की प्रकृति -

प्रासः ज्ञानमार्गी संतों का भाषागत संस्कार श्रवण से ही सर्वाधिक रूप में पल्लवित हुआ है । वे बहुश्रुत एवं यायावरी होने के कारण उन पर अनेक प्रांतीय भाषा-बोलियों का प्रभाव पड़ा है ।

गुजरात के संत कवि भी इसके अपवाद नहीं है । संतों ने व्यावहारिक

आदर्श भाषा के रूप में हिंदी को अपनाया है । इस दृष्टि से गुजरात के अखा, दयाराम, ब्रह्मानंद, मीरां, करुणासागर, छोटम जैसे कवि भी काव्यभाषा अथवा व्यावहारिक भाषा के रूप में ज्ञान और प्रेममार्गीय कवियों द्वारा व्यवहृत हिन्दी की नितांत उपेक्षा न कर सके । हिंदी-भाषी क्षेत्र से संपर्क के कारण, प्रभाव स्वरूप इन्होंने हिंदी की बोलियों को अपने-अपने ढंग और देशकाल के अनुसार आत्मसात किया है । यद्यपि गुजराती का सीधा संबंध ब्रज और पश्चिमी हिंदी से है, क्योंकि इसका मूल स्त्रोत शौरसेनी अपभ्रंश है, तथापि गुजरात के संत कवियों ने ब्रज के साथ ही अवधी या पूरबी बोली का भरसक प्रयोग किया है ।

संतों की भाषा के प्रमुख रूप को स्थिर कर पाना बड़ा ही कठिन है, चूँकि एक प्रकार से उनकी भाषा सधुक्कड़ी होने से उसमें अनेक प्रकार की बोलियों के शब्दों का समावेश हो गया है । डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि " संतों की भाषा में एकरूपता नहीं है । उसमें कहीं ब्रज के शब्द हैं, तो कहीं अवधी के और कहीं पंजाबी शब्द प्रयुक्त हुए हैं तो कहीं गुजराती के । भाषागत शब्द रूपों की भिन्नता जितनी संतों की भाषा में है, उतनी कदाचित अन्यत्र कहीं नहीं । " [1]
प्रस्तुत तथ्य के आधार पर हम करुणासागर की भाषा के व्याकरणिक रूप को देखेंगे । इन्होंने प्रायः ब्रज की प्रकृति को अपनाया है ।

कारक

कर्ता कारक - इसमें प्रायः ` ने ` प्रत्यय का प्रयोग होता है ।

कोउ = किसीने : कोउ न लहीत ते परम पुरेसरवे

सकृत भाष्य- छट दरशन देखावन पद-9

---

1. संत साहित्य - पृ. 249

जेही = जिसने : जेही जेही इष्ट कीयेहु इश्वर धरवे ।

सकृत भाष्य-ठाट दर्शन देखावन पद-9

हम = हमने : हम किना जेही मुक्त ही द्वारा

भजन सागर पृ. 237

कर्म कारक - इसका प्रत्यय ` को ` है । संत काव्य में प्राय: कर्ता कारक के प्रत्यय की तरह इसका भी कहीं लोप हो जाता है ।

जाको = जिसको : जाको इच्छत सूरि नर देव राया ।

भजन सागर पृ. 23

मोहिं = मुझको : सोई सकल विधि मोहिं बतावो ।

भजन सागर पृ. 146

मोकु = मुझको : मोकु कहो समझाई ।

भजन सागर पृ. 149.

कारण कारक - इसका प्रत्यय ` से ` है । संतों के द्वारा सो, ते, थे, सौं आदि प्रत्ययों का भी प्रयोग हुआ है ।

से : कैवल नामसे नेह

सकृत भाष्य-ख्याल पद-4

सो = से : मुसकवदन सो बोलावणो ।

ज्ञान,भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- साखी-2

ते = से : भयो पवनते अग्न, तेजते नीर निवासा ।

भजन सागर पृ 161

थे = से : जाथे होत सकल सब उतपन

भजन सागर - 233

संप्रदान कारक - इसके प्रत्यय ` को ` ` के लिए ` हैं परन्तु संत कवियोंने ` का `, ` कु ` आदि प्रत्ययों का प्रयोग इसी रूप में किया है ।

का = के लिए : देने का कछु है नहि, लेनेका कछु नहांय

साखी ग्रंथ- साखी-49

कु = के लिए : एक दिन करनकु सहेल, गये गुंजारन वन ही ।

विज्ञान सकृत मणिदीप - छप्पा 25

अपादान कारक - इसका प्रत्यय ` से ` है । करण में ` से ` का संयोगात्मक और अपादान में वियोगात्मक अर्थ होता है ।

से : सोही लक्ष हम कैवलसे लाये ।

अगाधबोध - अंग 85-10

संबंध कारक - प्रत्यय हैं का, की, के.

का : सुणी रे शब्द सतगुरु साहेबका ।

सकृत भाष्य- केरा पद- 5

की : ता दिनकी कहु सोय ।

विज्ञान सकृत मणिदीप -छप्पा 2

के : ता जलके सब संत ।

भजन सागर - पृ. 164

अधिकरण कारक - माहि, महोय, मे, में, मांही आदि प्रत्ययों का प्रयोग संतों के द्वारा होता रहा है -

मांही : अनहदकी मांही जोत्य समावे ।

भजन सागर पृ. 148

मे : सो छाया संसारमे, आतुर जीव निवास ।

भजन सागर- 152

महांय : दरशो घट मठ महांय गुरु परसादेव ।

भजन सागर पृ. 157

द्वारे : सप्त पंचमेरे द्वारे दिनदयाल ।

सकृत भाष्य- गरबी पद - 3

अव्यय

अव्यय - आलोच्य कवि ने अपनी रचनाओं में विभिन्न अव्ययों का भी

प्रयोग किया है ।

कालवाचक क्रिया विशेषण अव्यय -

अब बरनुं में सृष्टसुरेशा, आगे थापन मूल गणेशा ।

सकृत भाष्य- रवेणी पद-9

स्थानवाचक क्रिया विशेषण अव्यय -

ता मध्ये वासो ताहेरो, नूर सदा भरपूर ।

तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि 12/5

अवधारणबोधक क्रियाविशेषण अव्यय -

जो तुम आपनपो तजो, तो पति लेहेत बोलाय ।

तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि- 16/34

निषेधवाचक क्रियाविशेषण अव्यय -

जगत सकल जूठे प्रती आया, करताकी गति कोई नव पाया ।

सकृत भाष्य - रवेणी पद- 8

निश्चयवाचक क्रियाविशेषण अव्यय-

ऐसे प्रभु सतगुरु एक छिन मेरे, मिलावे निश्चे निरधार.

सकृत भाष्य- होली पद 2

संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय -

रात दिवस जड तनकु जंखी, होसी थावर पशु अरु पंखी ।

अगाधबोध अंग 85/14

विस्मयादिबोधक अव्यय -

अटपटा खेल अबधूतांका ?

सकृत भाष्य- खटदर्शन मत देखावन पद-3

क्रिया रूप -

करुणासागर की भाषा प्रायः पंचरंगी हिन्दी होने के कारण उसमें अवधी, ब्रज, गुजराती, खड़ी बोली आदि के शब्द-रूपों के दर्शन होते हैं ।

व्याकरणिक रूप से इसमें ब्रज या अवधी के सभी रूपों का प्रयोग नहीं मिलता । संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया और अव्यय जैसे रूपों में से उनके कुछ रूप ही मिल पाते हैं । रचना के स्तर पर जो भी शब्द- रूप उन्हें अनुभूत लगे या काव्य रूप में सहज ही आ गये, उनका इन्होंने स्वागत किया है । अतएव किसी भी भाषा-विशेष के सभी शब्द-रूपों की उपस्थिति इनके काव्य में नहीं मिलती । इतना होने पर भी इनकी भाषा ब्रज के अधिक निकट की लगती है । इस दृष्टि से ब्रज के होय, होइ, हुतो, भयो, दीयो, मिल्यो, कियो जैसे क्रिया-रूपों का प्रयोग द्रष्टव्य है --

भयो : स्वरूपानंद अबंध भयो नर ब्रह्मवे ।

भजन सागर 160

मिल्यो : सेहेज मिल्यो संयोग, योग मही बिजके दिनका

विज्ञान सकृत मणिदीप - छप्पा 21

कहीं कहीं अवधी के प्रारंभहु, बतावहु, कीयेहु आदि क्रिया- रूपों का प्रयोग हुआ हैं --

प्रारंभहु - प्रथम ग्रंथ प्रारंभहु, जब कैवल पति इश ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-दोहा ।

कीयेहु - कीयेहु लक्ष निज संत सभासन, तज योग साधनके ।

भजन सागर पृ. 145.

कहीं कहीं ` भया है `, ` दीयो पठाइ ` जैसे संयुक्त क्रिया-रूप भी दृष्टिगोचर होते हैं -

शिष्य - ॐ गुरुजी कुन तत्वसे नाद भया है ?

भजन सागर पृ.145

इनके क्रिया-रूपों पर गुजराती का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है- जैसे लिख्या, संतोष्या, राख्या, भरीया, करीया, तरीया, धरीया आदि-

1 धरमराय कर्ता संतोष्या । सकृत भाष्य- आशावटी पद 2

2 सत कुवेर उर राख्या । वही ।

यहाँ यह विशेष ध्यातव्य है कि उनकी मातृभाषा गुजराती थी, अतएव जहाँ उन्होंने ब्रज और अवधी का प्रयोग किया है वहाँ पर गुजराती का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है जैसे -

राज रहे अखंड सकलमे जेहनो ।

भजन सागर पृ. 156

माड्यो चोपट चोक ।

विज्ञान सकृत मणिदीप छप्पा 63

खरा अजाण्या दोय ।

साखी ग्रंथ- साखी 20

शब्द समूह

शब्द समूह - करुणासागर का शब्द भंडार पर्याप्त समृद्ध है । उन्होंने भाषा निर्माण में ब्रज, अवधी, उर्दू-फारसी, गुजराती एवं खड़ी बोली के शब्द लिये हैं । इनकी भाषा का संस्कार उपर्युक्त भाषाओं के माध्यम से हुआ है । यहाँ पर शब्दों के तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी रूपों पर प्रकाश डाला जा रहा है ।

तत्सम - आलोच्य संत ने संस्कृत और उसके वाङ्मय का विधिवत अध्ययन किया था । उन्होंने अपनी रचनाओं में नव व्याकरण षडशास्त्र, इतिहास और पुराण विषयक ग्रंथों में अपने पांडित्य एवं तदविषयक वादविवादों से धुरंधर पंडितों को पराजित करने की बात कही है -

काजी पंडित दोनु डमीये, सुनी मम ज्ञान आन पाव लभिये

तथा

खट दर्शन औरु द्वादश भेखु , करी चर्चा गये द्वार अनेकु ।

अगाध बोध- अंग 78 / 7,8.

उनके काव्य में संस्कृत के संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और सामासिक एवं संधि-रूपों का प्रयोग मिलता है । इस दृष्टि से उनके विभिन्न ग्रंथों से निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं --

ग्राम, सप्त, सिंधु, अष्ट, आद्य, रज्जु, योगेश्वर, नाभि, व्योम, हस्त, दग्ध, विप्र, प्रताप, विहंगम, पंगु, चतुर्दश, भवेती आदि -

व्योम : व्योम सकल अविकाशमां वाशा ।

सकृत भाष्य - रवेणी पद-6

विहंगम, पंगु : ज्यौं कोइ ओट रहाय विहंगम पंगु विना पर ।

विज्ञान सकृत मणिदीप - छप्पा-32

तद्भव - संत कवियों का संपर्क प्रायः जन-समाज से होने के कारण जन-मुख सुलभ तद्भव रूपों का विनियोग उनके काव्य में अत्यधिक मात्रा में हुआ है । करुणासागर का काव्य भी इस तथ्य का अपवाद नहीं रहा । उनके काव्य में प्रयुक्त संज्ञा, विशेषण और क्रियाओं के तद्भव रूप निम्नांकित है -

किरपा, जाचक, जुगति, सूक्ष्म, द्रिग, हरख, नैन, जुग, मारग, सरव, साम्रथ, निरवाण आदि -

साम्रथ : ओरु साम्रथनो संग करत नही ।

विश्वबोध चोसरा अंग 2/।

मारग : चलना चहाव कोहु मम मारग, छोडो आतनकी आकांक्षा

सकृत भाष्य - अविनाशी पद 4

देशज - करुणासागर का कार्यक्षेत्र गुजरात ही रहा है । अतः उनकी रचनाओं में गुजराती के अधिकांश शब्दों का समावेश सहज ही है । अतः इसी अर्थ में देशज शब्द को यहाँ ग्रहण किया गया है । प्रयुक्त होनेवाले देशज शब्द इस प्रकार है --

पोकार, नाखे, राखे, वहेवार, विना, परचा, रटो, विचारिये, पहोंचे आदि --

पोकार - नेति निगम पोकार कह्यां ना, हो संतो वा घर काहुं न जान्या

सकृत भाष्य-अविनाशी पद -2

परचा - परचा होत सबे उनही ते, यामे सकल डहंका ।

सकृत भाष्य- अविनाशी पद-4

उर्दू - करुणासागर ने लोक-भाषा में सामान्यतः प्रचलित उर्दू के सरल शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, जैसे --
फना, पाक, परवानगी, इलम, नूर, अलमस्त, निशानी, रब, खबर, बेहद, जाहान, बाजीगर आदि --

बेहद : कर ले वास बेहदमे ।

भजन सागर पृ. 151

बाजीगर : नहि बाजीगर कोय सांमथ ।

विज्ञान सकृत मणिदीप- छप्पा 62

सादृश्यमूलक शब्द - करुणासागर ने तन-मन, करम-धरम, सम-दम, सुख-संपत्ति, लंमट-लोभी, खान-पान, जनक-पिता जैसे सादृश्यमूलक शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है -

करम-धरम : करम धरम का दिपक बुझावे ।

सकृत भाष्य- रवेणी पद- 7

सुख-संपत्ति -: सुख संपत्ति रती जीवकु न सहाय ।

सकृत भाष्य - प्रबंध पद - 3

विरोधमूलक शब्द - करुणासागर की रचनाओं में राय-रंका, पावक-जल, अगोचर-गोचर, रात-दिन, आद्य-अंत, गुण-निरगुण जैसे विरोधमूलक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, यथा -

आद्य-अंत : आद्य अंत मध्य एक हमेत

सकृत भाष्य - खट दर्शन मत देखावन पद 7

भाषा वैज्ञानिक विवेचन

विपर्यय - शब्दों में प्रयुक्त होनेवाले स्वर, व्यंजन या अक्षर, वक्ता, प्रयोक्ता अथवा लेखक की असावधानी के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं । ध्वनियों की इस पारिवर्तनिक प्रक्रिया को भाषाविज्ञानिकों ने विपर्यय की संज्ञा दी है । इस प्रकार का ध्वनि परिवर्तन छंद-मात्रा की अनुकूलता के

लिए प्राय: मध्यकालीन संत-कवियों ने किया है । आलोच्य संत कवि के साहित्य में विपर्यय के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

स्वर विपर्यय -

अवतार-अवतारा : प्रकृति लिया अवतारा ।

सकृत भाष्य-अविनाशी पद 3

अहंकार- अहंकारा : मन बुध चित्त अहंकारा ।

सकृत भाष्य-अविनाशी पद 3

कुछ - कछु : इच्छत नांही कछु न कांही ।

सकृत भाष्य- प्रबंध पद 3

अनुपम-अनोपम : जोने अहंग आप निज रूप अनोपम ताहेरा ।

सकृत भाष्य - मंगल पद - ।

व्यंजन विपर्यय -

हमारा- माहेरो : ओहंग भुज माहेरो ।

भजन सागर पृ. 13.

तुम्हारा-ताहेरा : आप निज रूप अनोपम ताहेरा ।

सकृत भाष्य- मंगल पद ।

गम्य - ग्यम : घुढ ग्यम गति अनंत चंत, चित चवे कुवेर मुख ।

विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा 96

मात्रा भेद - शब्दों में मात्रा भेद के कारण कभी कभी ह्रस्व स्वर दीर्घ बन जाते हैं और दीर्घ स्वर ह्रस्व का रूप धारण करते हैं । मध्य - कालीन संत-कवियों की भाँति करुणासागर की रचनाओं में भी प्रस्तुत मात्रा भेद के रूपवाले शब्दों को देखा जा सकता है ।

ह्रस्व से दीर्घ -

अ- आ : छाट दरशन मत पुराण अठारा,

नामरूप लगे करत विस्तारा ।

सकृत भाष्य- रवेणी पद - 6

पंचतत्व आकाश आकारा, चौद लोक जावे निरधारा

भजन सागर- पृ. 81

इ - ई : ज्यौं दिपक मंदिर मध्य जोती ।

सकृत भाष्य - रवेणी पद 5

रेणी कर्म धर्म मती न मता ।

सकृत भाष्य -खट दरशन मत देखावन पद-4

नैन बैन रस रूप रसीक अतिवे ।

सकृत भाष्य-खट दरशन मत देखावन पद -8

उ - ऊ : जीवन मुक्त ऐसे कर देखो ।

सकृत भाष्य - रवेणी पद-3

दीर्घ से ह्रस्व -

आ - अ : असक [आशक] नही अनहुतांका ।

सकृत भाष्य-खट दर्शन मत देखावन पद-43

ई - इ : जैसे मिन इंदु गनत आप समवे ।

सकृत भाष्य- खट दर्शन मत देखावन पद 4

तिन्न श्रेष्ठ पावे भायगवजे ।

सकृत भाष्य - खट दर्शन मत देखावन पद-7

ऊ - उ : साच थकी सुन्यमे रवि राजत ।

विश्वबोध चोसरा - अंग 4 / 12

लोप

प्रायः मुख-सुख की सुविधा के कारण या स्वराघात के कारण कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है । ध्वनियों के लोप की प्रस्तुत प्रक्रिया दो रूपों में देखी जाती है । एक स्वर लोप के रूप में और दूसरी व्यंजन लोप के रूप में । प्रत्येक लोप के तीन रूप होते हैं - आदि लोप, मध्य लोप और अंत लोप । अब हम आलोच्य संत कवि के साहित्य में लोप द्वारा होनेवाले शब्दों के परिवर्तित रूपों को देखने का प्रयत्न करेंगे ।

स्वर लोप

आदि स्वर लोप -

तृष्णा - : आशा तृष्णा दो विकट विरोधी ।

सकृत भाष्य- रवेणी पद-2

शिशु : ज्यौं सुसु विछरे मात, पात दुख परम वियोगु ।

विज्ञान सकृत मणिदीप -छप्पा 82

चित्त : मेरा चंत लग्या चरकामें,

कांतु सांज सवेरा ।

सकृत भाष्य- चरकीड़ा पद-2

मध्य स्वर लोप -

पच्छिम : पच्छम द्वारे रे गवरी सुतका वासा ।

सकृत भाष्य- गरबी पद - 3

मुकुर : न्याय मुकुर करलाय ताय तुम जुवो विलोकित ।

विज्ञान सकृत मणिदीप छप्पा-42

गाफिल : नहि तो गाफल जायगा, कहे कुवेर पोकार ।

भजन सागर, पृ. 153

अंत स्वर लोप -

प्रकृति : पचीसमी प्रकृत व्रत ते महानिध मांही

विज्ञान सकृत मणिदीप- छप्पा-69

अग्नि : काष्ट पहांण मध्य अग्न निवासु

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- रवेणी-13

व्यंजन लोप

आदि व्यंजन लोप -

स्नेह : अष्ट प्रकार त्रिया नेह तजे ।

सकृत भाष्य-आट दर्शन मत देखावन पद-7

स्थिरता : थथा थिरता राखो मन ।

भजन सागर- पृ. 80

मध्य व्यंजन लोप

अन्न : वंछित अन जल भखत त्यौ पवनां ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-रवेणी-4

उच्चरे : तुलसीदास जे देव, भेव सुर अति उचरे ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- सोरठा-3

सहोदर : इन आये सर्व सौदर भ्रितव परम विशाल

भजन सागर पृ. 153.

पश्यंति : परा पसंती मध्यमा, वैखरी कुवेर सराय ।

तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि- तिथि-14

अंत्य व्यंजन लोप -

संशय : संशे सकल तजी तन मन अपौ ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-रवेणी-38

क्षितिज : क्षिति पावक जल पवन, सुन्यमें सांमा दरसी

विज्ञान सकृतमणि दीप- छप्पा-60

आगम

आगम की प्रक्रिया लोप नियम के विपरीत है । इसमें शब्द के साथ नई ध्वनियों का आगमन होता है । यह ध्वन्यागम शब्द के आदि, मध्य और अंत के रूप में होता है ।

आदि स्वरागम -

भवन : महानिधि महराज काज, ते चौद भोवनत्ये ।

विज्ञान सकृत मणिदीप- छप्पा-57

जहान : तिनके अंस जांहान, ज्ञान बिनु फरत अचरचर ।

विज्ञान सकृत मणिदीप - छप्पा-88

अंगुल : बावन आंगुल श्वासही, महानायक द्वादश जाण ।

भजन सागर - पृ. 153

मध्य स्वरागम -

प्रकार : पिंड सकल परकार ।

तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-2

दर्शन : बीनु सतगुरु संघ दरशन न पाई ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- रवेणी-14

पदार्थ : ताते आन्य पदारथ काचु ।

सकृत भाष्य - आशावरी पद-4

अंत स्वरागम -

शास्त्र : शास्तर खट घट मठ पट सोधे ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- रवेणी-26

ओर | : चाम चक्षु देखन मत ओरु,
ठोर | : पकर रहे करत वे सब ठोरु ।

अगाध बोध- अंग 81/7

व्यंजनागम

आदि व्यंजनागम - इसके उदाहरण प्रायः अप्राप्य है ।

मध्य व्यंजनागम -

गम : गुरु ग्यम ज्ञान वरथ विधि जागे

सकृत भाष्य - रवेणी- 8

नाद : अनहद न्याद सुणे साध ।

सकृत भाष्य - प्रबंध पद - 5

अंत व्यंजनागम -

निधि | : नव निध्य सिध्य में ,
सिद्धि | : डरप नहि दूतांका ।

सकृत भाष्य- खट दर्शन मत देखावन पद-3

बूंद : जम जलमे बुदंगा होय।

भजन सागर- पृ. 152

कतिपय अन्य स्वरादि परिवर्तन

ऋ - आ

हृदय : सांख्यको सार गीता कोजु हारद ।

भजन सागर पृ. 228

ऋ - र

मृत : मृत सजीवन जीवन मुक्ता ।

सकृत भाष्य - आशावरी पद- 4

वृक्ष : खग मृग व्रक्ष पशु मनख तनु ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-सोरठा-2

रेफ ' - र

गर्म : नहि ग्रमगां होय जैसा ।

सकृत भाष्य-आशावरी पद-5

मर्म : अगम अगोचर ग्रम ।

सकृत भाष्य-रवेणी-पद-10

क्- ग

मुक्ता : मन मान्या मुगताफल चरही ।

सकृत भाष्य-रवेणी पद-11

उपकार : पर उपगार स्वारथ सनहनावे

सकृत भाष्य-ब्रह्म दर्शन मत देखावन पद-8

य - ज

युग | : वरतत है जुग देह छता

यम | डरप नहि जम दूतां का

सकृत भाष्य-ब्रह्म दर्शन मत देखावन पद- 3

ण - न

कारण : भवके जेही कारन

विज्ञान सकृत मणिदीप -छप्पा-40

वेर कहो कुन निवारन ?

विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा-92

शब्द शक्ति

अभिव्यक्ति की क्षमता का मूलाधार है, शब्द शक्ति । काव्यगत भाव-सौन्दर्य अथवा उसकी अर्थवत्ता को प्रतिपादित करने की दिशा में शब्द शक्तियों का महत्त्व अपरिहार्य है । काव्य में अर्थ-शोभा के उत्पादक, ध्वनि, अलंकार, मुहावरे, प्रतीकादि जैसे भाषा के अन्य तत्त्व भी प्रायः किसी न किसी रूप में शब्द शक्तियों में ही अभिव्यक्त हो जाया करते हैं । काव्य में शब्द की शक्ति ही उसके अभीष्ट अर्थों की प्राण-प्रतिष्ठा करती है ।

विद्वानों ने शब्द की मुख्यतः तीन शक्तियाँ परिकल्पित की हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । शब्द की जिस शक्ति से जिस शब्द का स्वाभाविक अर्थ ज्ञात होता है, उसे अभिधा कहते हैं । अभिधा शक्ति द्वारा प्राप्त होने वाले अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं । जब किसी शब्द के वाच्यार्थ या मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित हो जाय, तब किसी अन्य शक्ति से शब्द का अभिप्राय ग्रहण करना पड़े, तब उसे लक्षणा शब्द शक्ति कहा जाएगा । मूल रूप से लक्षणा शब्द

शक्ति के दो भेद हैं - 1 रूढा लक्षणा 2 प्रयोजनवती लक्षणा । जिस शब्द से प्रचलित परंपरा के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध होता है, उसे रूढा लक्षणा कहते हैं । जिस शब्द शक्ति के द्वारा किसी विशेष प्रयोजन के आधार पर लक्ष्यार्थ बोधित होता है, उसे प्रयोजनवती लक्षणा कहते हैं । सादृश्य और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा शब्द शक्ति के दो भेद होते हैं - 1 शुद्धा 2 गौणी लक्षणा ।

शब्द के जिस व्यापार से उसके वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी विशेष अथवा गूढ अर्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं । शब्द और अर्थ के आधार पर इसके भी दो भेद हैं - 1 शाब्दी व्यंजना 2 आर्थी व्यंजना । यहाँ शब्द शक्तियों पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करना हमारा लक्ष्य नहीं है । अस्तु, यहाँ उनका संकेत मात्र ही किया गया है ।

अब हम करुणासागर के साहित्य में प्राप्त शब्द शक्तियों के कतिपय उदाहरणों को देखने का प्रयत्न करेंगे । यहाँ एक बात ध्यातव्य रहे कि शब्द शक्ति से प्राप्त काव्यगत अर्थ चमत्कारको उत्पन्न करना इनका प्रमुख लक्ष्य नहीं था । वे तो सधुक्कड़ी भाषा में अपने ज्ञानमार्गी भाव या आशय को जनमानस तक पहुँचाने में ही अपनी वाणी की सार्थकता समझते थे और सधुक्कडी भाषा प्रायः सरल ही होती है । उनकी वाणी में लाक्षणिकता एवं व्यंग्यभंगिमा को वहाँ देखा जा सकता है जहाँ दार्शनिक भाव-बोध की प्रतीति कराने हेतु उन्होंने सांकेतिक या प्रतीकात्मक भाषा-शैली का प्रयोग किया है ।

करुणासागर को शब्द शक्तियों का ज्ञान था, इसका प्रमाण इनकी प्रस्तुत पंक्तियों से मिलता है -

अजहद जहदाजहद लक्षण लख,
पक्ष नहीं तहां कहां सुरत रखे,
सो तो सर्व वर्जीत तित उतइत ,
चैतन दृष्ट जीनुं ओलखे ।

भजन सागर पृ. 233

उनकी दृष्टि से केवल प्रभु अक्षरातीत होने के कारण वह शब्द की अनेकानेक शक्तियों से भी परे हैं, वहाँ तक पहुँचने की गति तो गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है । " पक्ष नहीं तहां कहां सुरत रखे " कहकर उन्होंने शब्दातीत ईश्वर को निरूपित करनेवाली वाणी की अक्षमता को ही प्रकट किया है ।

अभिधार्थ

आलोच्य संत कवि ने प्राय: अभिधापरक वाणी का ही भरसक प्रयोग किया है । इस दृष्टि से इनकी रचनाओं में भाषा के निम्नलिखित रूप प्राप्त होते हैं --

1 परिचयात्मक प्रसंगों की भाषा - आत्मकथात्मक भाषा -

प्रथम अचानक सोय, मोय बालक तन भयेउ,
वनखंडी के मध्य, सदमातातु पयेउ,
सुत आपनेकु लेइ, पियेर जाती एक माइ,
लागी प्यास अपार तांहां, एक आई तलाइ ।

विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा-20

2 उपदेशात्मक भाषा

उठत बेठत हरतां फरतां,
संतन की सेवा रहीये करतां,
सहेज उपासन सूक्ष्म जन की,
सोही पण पावत गति सरजनकी ।

भजन सागर पृ. 243.

3 दार्शनिक विवेचन की भाषा

दर्शन जैसे गंभीर विषयों का निरूपण करते समय संत कवियों ने प्राय: उसे साधारण - जन - सुलभ बनाने के लिए अभिधापरक भाषा का ही उपयोग किया है --

1 हंसा अगम सुगम गत्य गावुं,
सतगुरु शब्द से भेद बतावुं
पंचतत्व मिलके भइ ओरी
महंमाया मध्य काजल घोरी
सकृत भाष्य-रवेणी पद-11

2 सतगुरु शब्द सकल विधि जाणे,
कर्ता की गति सो ही परमाणे ।
जैसे रज्जु अग्नि में जराइ,
बटक सहित पुनि दष्ट देखाइ ।
सकृत भाष्य-रवेणी-3

4 प्रश्नोत्तर भाषा -

शिष्य - ॐ गुरुजी कुन तत्व से नाद भया है ?
कुन तत्व से काया,
कुन तत्व से बुंद भया है,
कुन तत्व से माया ?

गुरु - व्योम तत्व से नाद भया है,
महानिधि से माया,
तेज तत्व से बुंद भया है,
तोय तत्व से काया ।
भजन सागर - पृ. 145

5 व्यंग्य बोधक भाषा -

ओरु खरकु ज्यौं सकर क्षेरवत पकीत खीर मंझारा,
यौं साकुट लंपट लोभीन कु, ज्ञान लगत वीख सारा
मंदे कु मोदक मुख भोजन, पावत होत हेरांतु
त्यौं साकुट नर ज्ञानकी गतीया, सुणता भक्ति बेरातु ।
विश्वबोध चोसरा अंग 1/15

लक्षणा

आलोच्य संत कवि करुणासागर का लक्ष्य काव्य चमत्कार उत्पन्न करना नहीं है । गूढ भावों को सरल वाणी में अभिव्यक्त करना ही उन्हें अभीष्ट रहा है । यही कारण है कि उनके काव्य में वाणी वक्रता के दर्शन नहीं होते, फिर भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य होंगे -

रूढा लक्षणा -

चलना चाहो कोहु मम मारग,
छोड़ो आ तन की आकांक्षा
काटी शीश धरो धरणी पर,
कुन राय कुन रंका ।

सकृत भाष्य-अविनाशी पद-4

प्रस्तुत उदाहरण में शिश काटकर धरणी पर रखने से तात्पर्य है अहंकार का त्याग करना । अहंकार-त्याग के बिना केवल दर्शन संभव नहीं । सिर काटकर रखने से मुख्यार्थ का बाध हुआ, किन्तु उसके द्वारा ही लक्षित अर्थ ` अहंकार हीन ` का प्रतिपादन हुआ । अलंकार रहित होने के अर्थ में ` सिर काटना ` मुहावरे का प्रयोग रूढ हो गया है । अतः यहाँ रूढा लक्षणा होगी ।

सारोपा लक्षणा - जब उपमेय के साथ उपमान भी स्पष्ट कथित होता है, तब सारोपा लक्षणा बनती है --

1 तन की आरती तत्त्व पंचमुख, इंद्रि एकादश बाती करी,
तुप प्रकृति भिजाइ बतियां, ब्रह्म अग्नि से ज्योत जरी ।

भजन सागर - पृ. 231

2 चरका ज्ञानका कीना, तत्त्व रूपसु लीना,
ताका कांतीया है सूत, पंचतार तत्त्व अनूप ।

सकृत भाष्य - चुंदडी पद-1

साध्यवसाना लक्षणा - इसमें उपमेय का कथन न होकर केवल उपमान का ही कथन होता है --

ऐसी चुंदडी अदभूत, ओढे बांझ केरो पुत,
संत कुवेर को निज ध्यान, चुंदडी नहीं ए बहमज्ञान ।
सकृत भाष्य- चुंदडी पद-।

यहाँ पर ` चुंदडी ` , ` बाँझ ` और ` पुत ` क्रमशः ज्ञान, माया और जीवात्मा के लिए प्रयुक्त होने से साध्यवसाना लक्षणा होगी ।

व्यंजना
=======

करुणासागर की भाषा-प्रकृति सशक्तकडी होने के कारण व्यंग्य की मार्मिकता पाठकों पर सीधी चोट करती है । इस दृष्टि से इनकी कटाक्षपूर्ण वाणी बड़ी ही मर्मवेधक दृष्टिगत होती है । यहाँ एक बात पुनः ध्यातव्य है कि उनकी व्यंग्य बोधक वाणी शास्त्रीय व्यंजना शक्ति के स्तर पर पूर्णतया लागू नहीं हो पाती । व्यंजना के दो भेद हैं - शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना । जहाँ अर्थ शब्द चमत्कार पर आधारित होता है, वहाँ शाब्दी व्यंजना मानी गयी है । शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रखने से व्यंजना नहीं रहती । आर्थी व्यंजना अर्थगत चमत्कार पर आधारित है । यहाँ उसी अर्थ का शब्द रखने पर अर्थगत चमत्कार में कोई कमी नहीं आती । करुणासागर की रचनाओं में आर्थी व्यंजना के उदाहरण उपलब्ध हैं —

1 जैसे सुकर कीच की मांही, मानत सदा आनंदु,
त्यौं साकुट, लंपट खल की चित, रहत मोहीत भव फंदु ।
विश्वबोध चोसरा - अंग- 3/17

2 आत्मा परमवी प्रत पूजा करे, इम साहेबना सांइ रीझे ।
केहं कुबेर नादान दो बंदगी, इंट पाषाण को ध्यान धीजे ।।
हंस तालेवा - अंग 2/5

3 शुद्धिको समझे नहि, कथे बहारलु ज्ञान ।
अलतो चढे ना अंगने, कुवेर तक ने पान ।।
साखी ग्रंथ- साखी-।

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि ऐसी व्यंग्य बोधक वाणी विभिन्न दृष्टांत आदि का संबल पाकर और भी पैनी चोट करने में कारगर हुई है ।

मुहावरे - कहावतें

=====x-x=====

मुहावरों और कहावतों के समुचित प्रयोग से भावों की सजीवता और रोचकता उत्पन्न होती है । इनमें भाषा की लाक्षणिक एवं व्यंग्यात्मक शक्ति को समाहित कर लेने का गुण है । अतः इनके प्रयोग से दीर्घातिदीर्घ भाव समूह भी अभिव्यक्ति के अपने लघु रूप में यथेष्ट प्रभाव को व्यक्त करते हुए काव्य की श्रीवृद्धि को प्राप्त करता है ।जब कोई शब्द समूह भाव-विशेष के रूप में लोक व्यवहार की भाषा- बोली में निरंतर प्रयुक्त होने लगता है, तब वह मुहावरों और कहावतों का रूप ग्रहण कर लेता है । इनमें सूक्ष्म भावों को मूर्त रूप प्रदान करने की शक्ति विद्यमान होने से इन से न केवल भावों की श्रीवृद्धि होती है, वरन् भाषा में चित्रात्मकता या बिम्बात्मकता भी स्वतः उत्पन्न होती है ।

संत -कवियों का जन-संपर्क का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत रहा है । उन्होंने बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होनेवाले मुहावरों और कहावतों का यथोचित उपयोग किया है । यहाँ हम आलोच्य कवि के साहित्य में प्रयुक्त मुहावरों को देखने का प्रयत्न करेंगे । इनके मुहावरों पर गुजराती मुहावरों की छाया स्पष्टतः दिखाई देती है । इनके मुहावरे विषय एवं भावों के अनुरूप हैं । स्वरूप की दृष्टि से इनके मुहावरों को तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है -
1 साधु समाज में प्रयुक्त होनेवाले मुहावरे 2 जन समाज में व्यवहृत मुहावरे 3 स्वयं द्वारा निर्मित मुहावरे । विशेष रूप से इनकी रचनाओं में ज्ञानोपदेश एवं नीति विषयक बातों के निमित्त अपने भावों को पुष्ट करनेवाले साधुसमाज में प्रयुक्त मुहावरे ही सर्वाधिक रूप में मिलते हैं । यहाँ कुछ मुहावरे उद्धृत किये जा रहे हैं --

पाये इलम अमस्ताकां । सकृत भाष्य- छट दर्शन- पद- 3
भव जल सहेजे पार परे । वही- पद- 5
सायर मर्म बा जाण्या हो । वही- केरा पद- ।
गांठ नव छूटे हो, पकर पकर जम लूटे हो । वही- चरकीड़ा पद-2
बिना पारस लोह होत न कंचन । वही- पद-3
हजरत हरि हाल हजूर । वही - प्रबंध पद-4
कथत ज्ञान बग समान । वही- पद- 6
आखी उमर इयु गमाइ । विश्ववबोध चोसरा-अंग- 1/21
भोमी भार करनकु । वही 2/15
जो पकरी सो पकरी । वही 4/16
कहे सत् कुवेर चोरासी जाय वे । भजन सागर पृ. 159
पडे छल मायानी फाँसे । वही- पृ. 205
अलतो चढे बा अंगने । साखी ग्रंथ- साखी-1

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि इनकी भाषा पर गुजराती का प्रभाव तो है ही साथ ही साथ भाषा प्रकृति कुछ ऐसी अटपटी है, जिससे मुहावरों का स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाता ।

अलंकार

काव्य में अलंकारों का उपयोग यथेष्ट भावों की यथानुरूप अभिव्यक्ति के निमित्त किया जाता है । इसके समुचित प्रयोग से ही भावोद्रेक में सहायता मिलती है । काव्य में आनंदप्रद चमत्कार की सृष्टि भी इसीसे होती है । काव्य में अलंकारों के महत्त्व पर बल देते हुए कहा गया है कि जैसे नारी सुन्दर अलंकारों को धारण करने से अनुपम सौन्दर्य में निखार उठती है, ऐसे ही काव्य में अलंकारों के उपयोग से उसके भाव सौंदर्य में निखार आ जाता है । यही कारण है कि काव्य के शोभायमान धर्म अलंकार माने गये हैं । काव्य की चारुता अलंकारों द्वारा ही संपन्न की जा सकती है । सामान्यतया अलंकार तीन प्रकार के होते हैं - । शब्दालंकार 2 अर्थालंकार 3 उभयालंकार ।

1 शब्दालंकार - शब्द विशेष पर आधारित अलंकार को शब्दालंकार कहा जाता है । शब्द के परिवर्तन से शब्द अलंकार नहीं रहता ।

2 अर्थालंकार - अर्थालंकार शब्द विशेष पर आश्रित नहीं होता । इसमें शब्द विशेष के पर्याय को भी ग्राह्य रखा जाता है ।

3 उभयालंकार - जहाँ शब्द और अर्थ दोनों में विशेषता हो वहाँ उभयालंकार माना जाता है ।

अब हम आलोच्य संत कवि के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे ।

शब्दालंकार

अनुप्रास - अनुप्रास के प्रयोग से भाव एवं वस्तुगत सौंदर्य की यथानुरूप प्रतीति तो होती ही है, इसके साथ ही साथ नादात्मक अथवा संगीतात्मक सौंदर्य में भी अभिवृद्धि होती है । प्रायः गेय काव्यों में इनसे विशेष छटा देखी जा सकती है । काव्य में चमत्कार भी इनके द्वारा ही संभव होता है । रीतिकालीन कवियों का यह प्रिय अलंकार रहा है । संत कवियों ने भी भाव सौंदर्य में चमत्कार लाने हेतु सहज रूप में इनका प्रयोग किया है । करुणासागर ने भी अनुप्रास के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया है । उनके समस्त काव्य में इसकी छटा सर्वत्र विद्यमान है । अनुप्रास के विभिन्न भेदोपभेदों का प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है --

छेकानुप्रास - जय जय केवल नाथ सनातन, सर्व किरतारन,
अखिलानंद अविनाश विलासीक विविध विधारन ।

भजन सागर पृ.।

वृत्यानुप्रास- जहाँ वृत्तिगत (उपनागरिका, परुषा और कोमला) एक या अनेक वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होती है, वहाँ वृत्यानुप्रास अलंकार होता है --

उपनागरिका वृत्ति - रामदास दासन के दासा, ता चरनन की छेस ।

भजन सागर- पृ. 105

परुषा वृत्ति - सर्व सिद्धांत समेट, नेटनु जेही निराकृण,
ते न सके कोउ मेट ठेठनुं थपित अचल अरूण ।
भजन सागर- पृ. 196

कोमला वृत्ति - मन मान्या मुगताफल चरही, हंसा हंस संग हलमल करही ।
सकृत भाष्य - रवेणी पद- ।।

श्रुत्यानुप्रास - जहाँ कंठ, तालु, ओष्ठ आदि किसी एक ही स्थान से उच्चारित किये जाने वाले वर्णों की समता की जाती है, वहाँ श्रुत्यानुप्रास अलंकार होता है -

1 गुणातितः अतित अमापक, साक्षिवंत संतन पखे,
जपहे जन हंसा केवल, जाप जेही पद अजर अखे ।
भजन सागर- पृ. 235.

2 सुध्य समरस रस ठस दसु दसा सजा,
कुवेर सोये तांणी सोड सखे ।
भजन सागर- पृ. 233

लाटानुप्रास - आपा मेटे तो आप है,सो आपा कछु और
गये सुन्य के सत्व ज्यौं, रह्यो सुन्य जे ठोर ।
साखी ग्रंथ- साखी- 47

यहाँ ` आपा ` और ` सुन्य ` शब्दों की आवृत्ति विद्यमान है । आवृत शब्दों का अन्वय करने से अर्थ में अंतर आ जाता है । अतः लाटानुप्रास अलंकार है ।

अंत्यानुप्रास - बिंदु भुमर साहेर जेती,
भोमी तरण रेणुका तेती ।
भजन सागर- पृ. 207

पुनरुक्तिप्रकाश - जहाँ पर चमत्कार या रमणीयता की दृष्टि से शब्द की आवृत्ति होती है, वहाँ पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार होता है -

1 घट घट भ्रम वासना घेरी ।
2 ताते समझ समझ मन मेरा ।

अर्थालंकार

उपमा - 1 हंसा रे होड करी मूख बोले,
करणी काग समान हो ।
सकृत भाष्य- चरकीडा पद- 2

2 गोल बोल सम ज्ञान ध्यान की गती न जाणत गधवा ।
विश्वबोध- चोसरा अंग- 1/14

मालोपमा - इष्य महीं सींगार उपज जहुं, पाम कुलाल पकवमें,
टेढा मुख फुटल फोगट घट, त्यौं निपज्य खल भवमें ।
चिभड़ आध औरु तुरै तुंबमंही फलीत कोहु कटुकाई,
खान पान तेही अरथ न आवत, त्यौं साकुट समताई ।
विश्वबोध चोसरा-अंग 3/11

रूपक - उपमेय और उपमान की एकरूपता रूपक कहलाती है ।

सांगरूपक - 1 आध मध्य अंत कैवल सर्वोपरी,
ते हरि हुं वरी सत सोई ।
शब्द शरणाई भव भाव भुंगल बजी,
प्रेम पिठि चढी अंग मोई,
सत दृढ नेम दो छेडला गांठिया,
सुरति संधारण वरमाल प्रोइ ।
सकृत भाष्य- प्रभात पद-5

उपर्युक्त पद में वैवाहिक संस्कार विधि के वातावरण को आत्मा और परमात्मा के विवाह के रूप में चित्रांकित किया गया है ।

2 आध वसंत अध्यात्मक अविगत, ज्ञान भवन दृष्टि खोलो ।
संत सकल मिली वेल विलासी, अनुभव केशर फूल्यो,
ज्ञान बटाडे रंग बेरंगो, निर निरंजन भेल्यो ।
भरी पिचकारी आध ओहंकारे, दाव सोहंकर दीनो,
सनमुख चोट करी सुध्य चेतन, ब्रह्म भयो रंग भीनो ।
सकृत भाष्य- वसंत पद-1

विभावना - जहाँ पर कारण का अभाव होते हुए भी कार्य के होने का वर्णन किया जाता है, वहाँ विभावना अलंकार होता है ।

करुणासागर के काव्य में ईश्वर-स्वरूप निरूपण के प्रसंगों में विभावना अलंकार की सुन्दर सृष्टि हुई है -

1 बिना नैनकु निरखुं, बिना सुरति को ध्यान,
बिना रसना रस अगम है, बिना चिंतवन को ज्ञान ।
बिना जानन को जानवो, बिन वस्ती को गाम ,
बिन तंतु को तेज है, बिन धाता को धाम ।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-13

2 गति बिना गवन, पाव बिना पंथा, रवि बिना तेज असंका,
रूप बिना मूरत,सूरत बिन नीरखन, तार बिना बाजत रंकरा ।
पूजा बिना देव, सेव बिना सनमान,रिद्धि बिना भोग धरंका ,
सकृत भाष्य-अविनाशी पद-4

विनोक्ति - जहाँ एक वस्तु के अभाव में दूसरे को शोभित अथवा अशोभित कहा जाता है, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है । जैसे -

1 त्यौं अज्ञान निशा निज दिपक, हरि बिना आन्य उपासा,
ज्ञान अरक सूणीये जेही जनकु, तेही का तेही विसवासा ।
विश्व बोध- चोसरा-अंग- 1/9

2 जीनके ज्ञान प्रताप पुरवसे, विप्र कहत सब कोई,
ते ज्ञानीन की नंद करत अब समझ बिना शठ सोई ।
विश्वबोध चोसरा - अंग- 2/6

3 बिनु निज भक्ति से मुक्ति न पायं, त्रिविधं तापं बुझं न कदायं ।
बिनु तप्त बुझं चित्तं शांति नायं,बिनु चित्त शांतं नचिंतं न रहायं ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- भुजंगी 1,2

उल्लेख - जहाँ एक ही वर्णनीय विषय का अनेक प्रकार से वर्णन होता है, वहाँ उल्लेख अलंकार माना जाता है । आलोच्य संत कवि ने विश्वबोध

चोसरा ग्रंथ में साकुट, लंपट, लोभी और खल के लक्षण-निरूपण के प्रसंग पर उल्लेख अलंकार की सृष्टि की है । इसी प्रकार अज्ञानी, दुष्ट, बुघरा आदि के लक्षणों का उल्लेख भी अनेक रूप से किया गया है । यहाँ पर इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं --

1 सप्त धातमें कथीर कांसमें पारस परस न लागे,
त्यौं चारु एही बरन धातमें गुरुमणि परस न पागे,
करम कठोर बगल बल भरीया, समझ न सेख सारंदु,
ते साकुट लंपट लोभी खल, मल भरीया मति मंदु ।
विश्वबोध चोसरा-अंग-3/2

2 नीचे कुल के उच भयल ते, सकल शास्त्र मत जीनके,
सो जूठन परसादी पुरुख के, विप्रलोकन तीनके ।
सो निज निगम साहास्त्र आधारन, ब्रह्म जोन्य भल बाजे,
परधन से धनवंत कहावत, ज्यों जल बिन घन गाजे ।
ते अज्ञानी दुष्ट दग्ध जन, बुघरा नेक न माने ।
विश्वबोध चोसरा - अंग 2/4

कारणमाला - जहाँ उत्तरोत्तर कहे गये पदार्थों के पूर्व कहे गये पदार्थ कारण-भूत होते हैं, वहाँ कारणामाला अलंकार होता है । जैसे-

1 आगे तत्त्व आकाश तायते पवन प्रकाशा,
भयो पवन ते अगन तेज ते नीर निवासा ।
भजन सागर-पृ. 161

2 पंच तत्त्व में जाणीये, व्योम सकतनी आद,
ग्राहक तत्त्व समीर है, भयो है शून्य प्रसाद ।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि अभास.

दृष्टांत - करुणासागर का यह एक अत्यंत प्रिय अलंकार है । प्रायः सर्वत्र इन्होंने दृष्टांत शैली का ही प्रयोग किया है । यहाँ कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं --

1 ज्यौं बीजग अंकुर से, प्रगटे पत्र पराग,
त्यौं निज ज्ञान समझ थकी उपजे भक्ति वैराग ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- दोहा-8

2 जैसे रज्जु अग्नि में जराइ,बटक सहित पुनि दृष्ट देखाइ,
नखशिख सकल दिशे बिन जरही,बंधन बांधत परिक्षा पडहि ।
जीवन मुक्त येसे कर देखो दग्ध जेवरी दृष्टांतने पेखो ।
सकृत भाष्य- रवेणी- 3

3 जैसे प्रीत पर्पया प्रेरक स्वांतिक छिप सनेह ,
भास छट मेघ नीर खारो, करत नही परवेश ।
सकृत भाष्य-ख्याल पद-2

ऊपर इन्हीं अलंकारों की ओर दृष्टिपात किया गया है कि जो उनके काव्य में प्रायः अधिक बार प्रयुक्त हुए हैं । करुणासागर ने अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है । भावों की अभिव्यक्ति के प्रसंगों पर स्वतः अलंकारों की सृष्टि हो गयी है । इससे काव्यगत सौंदर्य की अभिवृद्धि में सहायता मिलती है । इनमें श्लेष, यमक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का नितांत अभाव है ।

काव्य स्वरूप और पद योजना

करुणासागर ने विशेष रूप से काव्य की पद शैली का उपयोग किया है । पद कोटि की रचना को मुक्तक काव्य के अंतर्गत रखा जाता है । स्वरूप भेद से पद भी दो प्रकार के होते हैं - गेय पद और पाठ्य पद । गेय पद में गीति तत्त्व की प्रधानता होती है, जब कि पाठ्य पद में इनका अभाव होता है । डॉ. गोविंद त्रिगुणायत [1] ने समस्त मुक्तक काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया है - 1 गीति काव्य । 2 नीति काव्य और रीति काव्य । आलोच्य संत कवि की पद रचनाएँ प्रथम दो कोटि की हैं । इन्हें भावात्मक एवं विचारात्मक पद भी कहा जा सकता है, किन्तु कवि ज्ञानमार्गी

---

1. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत-2-पृ.28.

होने से पदों पर ज्ञानपक्ष की प्रधानता है । ऐसे पद ` प्रबंध पद ` कोटि की रचनाओं में मिलते हैं । मुक्तक काव्य- शैली की दृष्टि से इनमें प्राय: 1 दोहा 2 चौपाई और पद जैसे तीन रूपों की प्रधानता सर्वाधिक रूप में दृष्टिगत होती है ।

1 दोहा - दोहे के विषम चरणों में 13 और सम चरणों में 11 मात्राएं होती हैं । संत कवियों की भाँति आलोच्य संत कवि ने भी दोहे को कहीं कहीं साखी के रूप में प्रयुक्त किया है । उक्त मात्रा भेद की दृष्टि से इनके दोहे या साखियाँ पूर्णतया सिद्ध नहीं हैं । इस दृष्टि से ` हंस तालेवा, ` अगाध बोध ` एवं ` स्वाचार पत्रिका ` के दोहे देखे जा सकते हैं । ` हंस तालेवा ` से इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है --

काव्य नहि कविता नहि, नहि गुण ग्रहेवा ज्ञान ।
परम अंश पति परम के, काढ़ू पोत नीदान ।।
अंत - साखी- 10

2 चौपाई - चौपाई के प्रत्येक चरण में प्राय: 16 मात्राएं होती हैं । संत कवियों ने इसका प्रयोग आख्यान या कथा वर्णन जैसे प्रसंगों पर ही विशेष रूप से किया है । दोहे की भाँति यहाँ भी 16 मात्राएं प्राय: नहीं मिलतीं । ` सकृत चिंतामणि `, प्रणव सिद्धांत ` प्रणव कल्पतरु ` तथा ` अद्वैताद्वैत नरवेद चिंतामणि ` जैसे ग्रंथों में प्राय: विपुल मात्रा में चौपाई का प्रयोग हुआ है, किंतु इनमें भी मात्रा-विवेक का अभाव ही है । यहाँ इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा -

परम तत्त्व सोही नाम है, प्रति वादीन अभीप्राय ।
जुठे जुग भरमावन, पकडन पेज ऊठाय ।।
प्रणव सिद्धांत प्रणव कल्पतरु- केतु 1/10

3 पद शैली - पद शैली में लिखे गये पदों में गीति काव्य और नीति काव्य की शैली दृष्टिगत होती है । गीति काव्यात्मक पदों में आध्यात्मिक भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । ऐसे गीति काव्य को स्वरूप भेद की

दृष्टि से रूपकात्मक गीति काव्य कहा जाता है । इस दृष्टि से वसंत, होली, आरती, चरकीडा, रमैनी, लावनी आदि में आदि से अंत तक प्रायः एक ही भाव की नियोजना संगीतात्मक रूप से हुई है । यहाँ कतिपय पदों से एक एक उदाहरण प्रस्तुतव्य है --

1 वसंत पद - 1

आद्य वसंत अध्यात्म अविगत, ज्ञान गवन दृष्टि खेलो,
अद्वैत ब्रह्म अखंड अखाडे, वाडे मलीने मेलो ।

सकृत भाष्य

2 चरकीडा पद -2

पंचरंगी चरखावे जन कांते कांतबहारा
मेरुदंड मध्य मोभ बिराजे, थीर थांभलीओ सारा
हस्तचरण केरी आंगलीओ, पांखडीओ परमाणावे । ...

सकृत भाष्य

3 ख्याल पद - 2

गुरु चरण में राच मन रे तुं, गुरु चरन में राच
सकल समाधि शिर पारसमणि, लोह कंचन परसात
पारसते चिंतामणी पायो, और कथीर सब कांच... मन रे तुं

भजन सागर पृ. 224

4 शून्य पद- 1

अष्ट पहोर मन रटण रटो, जप कैवल कैवल कहीये हो ।
बिनु प्रेहेतन बिनु प्रयास बिना नार,मोक्ष परम पद गइये हो ।..

भजन सागर पृ. 224.

कतिपय पदों के आगे आलोच्य कवि ने उनके रागों के नामों का उल्लेख भी कर दिया है । इस दृष्टि से टोडी, घनाक्षरी, केरा,आशावरी, फेर,धुमेर और कदडो जैसे प्रयुक्त राग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । जैसे -

1 संतो अविगत की गत न्यारी, तामे शुं जाणे संसारी
संतो अविगत की गत न्यारी ....
सकृत भाष्य-आशावरी राग पद-1

2 निजानंद निज धाम सधाम, सदा लगे रहयो सदाय के
ताको अणुमार अंश, रची हे सृष्टि आय के
कैवल प्रकाश-राग फेर-पृ. 81

इनके पदों में दार्शनिक जैसे अति गंभीर और शुष्क विषय को लोक-धुनों पर आधारित रागों से बाँधने के कारण काव्यगत चारुता एवं सरसता में सहज ही श्रीवृद्धि को प्रति चरण देखा जा सकता है ।

नीति विषयक पद - करुणासागर ने ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सद-असद वृत्तिवाले मनुष्य, जीव, जगत, ईश्वर एवं सांप्रदायिक रीति-नीति संबंधित अनेक पदों की रचना की है । इनमें नीति एवं उपदेश का भाव प्रधान होने से ऐसे पदों का विचार नीति-विषयक पदों के अंतर्गत किया गया है । ऐसे पदों में ज्ञान अथवा विचार तत्त्व की प्रधानता होने से भावतत्त्व गौण रूप से विद्यमान है । उदाहरण की दृष्टि से इस कोटि के पदों में मंगल पद, छट दर्शन मत देखावन पद, कक्का पद, रवेणी पद, तिथि पद एवं चेतवणी जैसे पदों को विशेष रूप से लिया जा सकता है । यहाँ चोसरा और रवेणी पद से एक एक उदाहरण ध्यातव्य है --

1 प्रगट राम अरु कृष्न हुते जब छाँटन लेवत केते,
पोक्ष भये तव मूरख मूरत की, प्रेहेत प्रसादी लेते ।
अणदेखी ओर की कही, मानत, देखी-धरत न कहाँ ने,
ते अज्ञानी दुष्ट दग्ध जन, नुघरा नेक न माने ।
भजन सागर- पृ. 116

2 संत सकल के धरी चीत चरणु, विश्वविलास उपासकु बरणु,
अद्वैत ब्रह्म अखंड अलेखा, अरूपते रूप निरंजन लेखा ।
पुरुष निरंजन आद कहाया, ताते अंजन प्रगटी माया,
महामाया बल अकल अनेरा, पंचतत्त्व ताते भये चेरा ।
सकृत भाष्य-रवेणी पद-9

करुणासागर के ज्ञानोर्मि कोटि के पदों में विचार और भाव तत्वों का सुन्दर समन्वय हुआ है । कवि हंस से कह रहे हैं -

उड उड हंसा जांहां करी लेने वासा, मान सरोवर मुक्ता खासा ।
सकृत भाष्य-रवेणी पद- ।।

करुणासागर के पदों पर मध्यकालीन गुजराती संत कवियों का प्रभाव पड़ा है । गुजरात के प्रेम और ज्ञानमार्गी कवियों ने पद शैली के स्तवन, लावणी, आरती, भजन, कीर्तन, थाल, थोल, हालरडा, मास, तिथि, गरबा, गरबी, रास, प्रभातिया, छप्पा, चाबखा, बारमासी और चोसरा जैसे प्रकारों को अपनाया था । आलोच्य कवि ने अपने पदों की रचना भी रवेणी, तिथि, मास, चोसरा, तबक, छप्पा, गरबी, प्रभातिया और थाल जैसी पद शैलियों में की है । प्रायः उक्त पद शैलियाँ लोकगीतों की धुनों पर आधारित हैं । इनके विपुल प्रयोग से हम आलोच्य कवि की संगीत-ज्ञान संबंधी जानकारी के साथ ही साथ उनकी लोकप्रियता को भी देख सकते हैं ।

करुणासागर ने भुजंगी, सोरठा जैसे छंदों का भी प्रयोग किया है, परंतु ऐसे छंद बहुत ही कम हैं और उनमें उनके शास्त्रीय लक्षणों के निर्वाह का प्रायः अभाव होने से अशुद्ध ही हैं ।

उपर्युक्त समस्त पर्यालोचन के आलोक में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि करुणासागर का अभिव्यक्ति पक्ष सर्वथा विषयानुभूति के अनुरूप ही है । हाँ इतना अवश्य है कि कवि के व्यक्तित्व का संस्कार गुजरात की भूमि पर होने के कारण उनके काव्य पर गुजराती भाषा और पद शैली का प्रभाव विद्यमान है । कवि ने काव्य की रचना काव्य चमत्कार के निमित्त न करके अपने ज्ञानोपदेश को जनसामान्य तक पहुँचाने के उद्देश्य से ही की है और इस रूप में वे सफल भी हुए हैं ।